36

अम्बुड्समैन

(OMBUDSMAN)

अम्बुड्समैन की आवश्यकता (Need for Ombudsman)

जब से राज्य की कल्याणकारी गतिविधियों का प्रारम्भ हुआ है, सार्वजनिक कार्यों के प्रबन्ध में राज्य की भूमिका बढ़ती जा रही है। अब तो इसका क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि इसमें मानवीय क्रियाओं के सभी आयाम घिर गए हैं। राज्य की प्रशासनिक मशीनरी मानव-जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करती है और यह प्रभाव कई प्रकार से डाला जाता है, जैसे कार्यकारी नियंत्रण तथा आदेश, परमिट, लाइसेन्स आदि के द्वारा। जहाँ राज्य की मशीनरी पर नागरिक अधिक से अधिक आश्रित होता जा रहा है, वहाँ उसकी कठिनाइयाँ और शिकायतें भी बढ़ती जा रही हैं। प्रशासनिक अकुशलता, जैसे विलम्ब, लाल-फीताशाही, सुस्ती आदि बातें साधारण हो गई हैं। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया है। अतः प्रशासन में स्वेच्छाचारिता का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। यह अनुभव किया गया है कि उच्च प्रशासनिक अधिकारियों, प्रशासनिक तथा न्यायिक न्यायाधिकारणों, संसद तथा इसकी समितियों के द्वारा शिकायत सुनने के प्रबन्ध या तो उपलब्ध नहीं हैं, अपर्याप्त, अत्यधिक औपचारिक, अत्यधिक महँगे और समय नष्ट करने वाले हैं। अतः यह महसूस किया गया है कि यह अनिवार्य है कि नागरिकों की शिकायतें सुनने की एक ऐसी मशीनरी होनी चाहिए जिस पर खर्च कम हो, जो कम औपचारिक हो और शीघ्र न्याय दिलाए। यह प्रभावी और निष्पक्ष होनी चाहिए, जो जनता में विश्वास उत्पन्न कर सके।

स्वीडन में अम्बुड्समैन (Ombudsman in Sweden)

इसका प्रारम्भ स्वीडन (Sweden) में हुआ जहाँ 1809 के संविधान ने एक अद्वितीय संस्थान— अम्बुड्समैन की स्थापना की, ताकि नागरिकों को प्रशासनिक अन्याय अथवा किसी सरकारी अधिकारी द्वारा शक्ति दुरुपयोग से सुरक्षित किया जा सके। "अम्बड्" शब्द का अर्थ एक ऐसा व्यक्ति होता है जो किसी अन्य व्यक्ति का प्रतिनिधि या प्रवक्ता हो। स्वीडन में अम्बुड्समैन की नियुक्ति संसद करती है ताकि वह एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में सभी लोक-अधिकारियों– सैनिक, असैनिक तथा न्यायिक, के कार्यों का निरीक्षण कर सके। आजकल वहाँ चार अम्बुड्समैन हैं जिनमें एक को मुख्य अम्बुड्समैन (Chief Ombudsman) कहा जाता है। प्रत्येक अम्बुड्समैन एक सुनिश्चित व्यवसायिक क्षेत्र की देखभाल करता है।

स्वीडन के अम्बुड्समैन की शक्तियाँ बहुत विस्तृत हैं। वह सभी लोक-अधिकारियों का निरीक्षण करता है। यहाँ तक कि न्यायालयों और न्यायिक अधिकारियों को भी उसके क्षेत्र से बाहर नहीं रखा गया। एक अम्बुड्समैन किसी भी प्रशासनिक सत्ता अथवा न्यायालय द्वारा किये जा रहे विचार-विमर्श के दौरान उपस्थित रह सकता है, सभी प्रकार के अभिलेख (Records) की जाँच कर सकता है; वह इस बात को देखता है कि प्रशासन विधि और संविधान के अनुकूल चलाया जा रहा है कि लोक-अधिकारी न तो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करें और न ही विधि से बाहर प्रयोग करें, कि न्याय उचित और निष्पक्ष ढंग से हो, और नागरिकों की स्वतंत्रताओं और अधिकारों का उल्लंघन न हो।[1]

अम्बुड्समैन को यह भी सत्ता दी गई है कि वह किसी भी पथभ्रष्ट लोक-अधिकारी पर मुकदमा चला सके अथवा उसे अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए किसी गम्भीर लापरवाही के लिए पद से हटाने के लिए उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही की सिफारिश कर सके। यहाँ तक कि अम्बुड्समैन सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर मुकदमा चलाने की भी सिफारिश कर सकता है।[2]

स्वीडन की अम्बुड्समैन योजना की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह स्वयं किसी अधिकारी को दण्ड नहीं दे सकता। वह कर्मचारी के उच्च विभागीय अधिकारियों को उसके कार्यवाही करने की सिफारिश कर सकता है। वह किसी अधिकारी के द्वारा पहले से किये निर्णय उलट या बदल नहीं सकता है, परन्तु वह उचित उच्च अधिकारी को दोषपूर्ण आदेश या निर्णय को या वापिस ले लेने का परामर्श या सिफारिश कर सकता है। वह व्यक्तिगत दोषों को दूर करने केवल सिफारिश नहीं कर सकता, अपितु नियमों, कानूनों, कार्यविधियों और व्यवहारों में संशोधन सुझाव दे सकता है यदि वह यह देखे कि इनमें कोई दोषपूर्ण है अथवा लोकहित के लिए हानिकारक है।

अम्बुड्समैन को अधिकार है कि वह किसी व्यक्ति की शिकायत पर कार्यवाही शुरू कर सकता है या स्वयं ही कार्यवाही आरम्भ कर सकता है। वह किसी शिकायत को तुरन्त रद्द कर सकता है यदि वह यह समझे कि शिकायत निराधार, तुच्छ या कष्टप्रद है।

यह ऊपर कहा गया था कि न्यायाधिकारी इसके क्षेत्राधिकार के अधीन होते हैं, परन्तु संसद सदस्यों और मंत्रिमंडल के सदस्यों को इसके क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया है। ऐसा इसलिए किया गया कि यह संस्थान निर्विवाद और राजनीति से दूर रहे।[4]

अम्बुड्समैन विधानमंडल, कार्यकारिणी तथा न्यायपालिका तीनों से स्वतंत्र होता है। इसमें से किसी को अधिकार नहीं कि उसके दैनिक कार्य में कोई हस्तक्षेप कर सके। अम्बुड्समैन की नियुक्ति चार वर्ष की निश्चित अवधि के लिए होती है और उसको पद से केवल तभी हटाया जा सकता है यदि वह संसद का विश्वास खो बैठे। वह संसद के प्रति अपनी वार्षिक रिपोर्ट पेश करता है।[5]

स्वीडन में इस संस्थान की सफलता के उपरांत इसकी ओर दूसरे देशों का ध्यान भी आकर्षित हुआ। परिणामस्वरूप अब तक 40 से ऊपर यूरोप, अफ्रीका और एशिया के देश इसको अपना चुके हैं जैसे– ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, घाना, जाम्बिया, नाइजीरिया, पाकिस्तान, आदि। परन्तु हर देश ने इसमें अपनी-अपनी परम्पराओं और सामाजिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक संरचनाओं के अनुकूल अनिवार्य परिवर्तन किए हैं।

भारत में अम्बुड्समैन (Ombudsman in India)

यद्यपि भारतीय संविधान न्यायपालिका और विधानमण्डल के माध्यम से नागरिकों की क्षतिपूर्ति के लिए नियंत्रण और संतुलन की व्यवस्था करता है, किन्तु व्यवहार में यह पर्याप्त नहीं है और इन तक नागरिकों की पहुँच आसानी से नहीं हो सकती। अतः अम्बुड्समैन जैसे संस्थान को स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की गई ताकि दुःखी नागरिक की पीड़ा या शिकायत का उपचार सस्ते सरल और शीघ्र तरीके से हो सके।

भारत में ऐसे संस्थान को स्थापित करने की माँग सर्वप्रथम 1960 में संसद सदस्य के० एम० मुंशी ने की थी। इसके उपरान्त 1962 में भारत के अटार्नी-जनरल (Attorney-General) एम० सी० सीतेलवाड और 1963 में भारत के सर्वोच्च न्यायाधीश ने इस माँग का समर्थन किया।[6] 1963 में संसद सदस्य एल० एम० सिंधवी ने इस विषय को संसद में उठाया। उसी वर्ष राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति ने ऐसे संस्थान को स्थापित करने की सिफारिश की। इस विषय को 1964 तथा 1965 में भी संसद में उठाया गया जिसके परिणामस्वरूप प्रशासनिक सुधार के लिए संसद सदस्यों का एक सलाहकार समूह स्थापित किया गया। 1966 में इस विषय पर प्रशासनिक सुधार आयोग (Administrative Reforms Commission) ने विचार किया और ऐसे दो संस्थानों को स्थापित करने की सिफारिश की– लोकपाल तथा लोकायुक्त। आयोग की सिफारिशों के अनुसार इन संस्थानों की अमुक विशेषताएँ होनी चाहिये।[7]

1. वे जाहिरा तौर पर स्वतंत्र और निष्पक्ष होने चाहिए।

2. उनके द्वारा की जाने वाली जाँच-पड़ताल और कार्यवाही गुप्त होनी चाहिए और यह अनौपचारिक भी होनी चाहिए।

3. जहाँ तक सम्भव हो सके उनकी नियुक्ति राजनीति से प्रभावित नहीं होनी चाहिए।

4. उनका पद देश में सर्वोच्च न्यायिक पद के सामान होना चाहिए।

5. वे ऐसे विषयों पर विचार करें जो स्वेच्छाचारिता के क्षेत्र में आते हैं और जिनमें अन्याय, भ्रष्टाचार अथवा पक्षपात का कार्य किया गया हो।

6. इनकी कार्यवाही में न्यायालयों का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए और सम्बन्धित सूचना प्राप्त करने के लिए उन्हें अधिकतम ढील और शक्तियाँ दी जानी चाहिए।

7. उन्हें सरकार से किसी लाभ अथवा वित्तीय लाभों की आशा नहीं करनी चाहिए।

इस विषय पर प्रशासनिक सुधार आयोग ने जो रिपोर्ट अक्टूबर 1966 में प्रस्तुत की, उसके साथ एक विधेयक का मसौदा तथा लोकायुक्त की व्यवस्था थी। आशय यह था कि लोकपाल केन्द्र तथा राज्यों के मंत्रियों और सचिवों के खिलाफ शिकायत सुनेगा और लोकायुक्त (जो केन्द्र तथा राज्यों दोनों में होंगे) निम्न अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतों का निर्णय करेगा।

मई 1968 में लोकसभा में लोकपाल विधेयक पेश किया गया और फिर अप्रैल 1971 और 1977 में विधेयक पेश किये गए, किन्तु उनका कोई परिणाम नहीं निकला। एक अन्य विधेयक लोकसभा में अगस्त 1985 में पेश किया गया। आधुनिकतम विधेयक 1996 में पेश किया गया, परन्तु इसकी धारायें पतनोन्मुख होने के कारण इसका बहुत विरोध हुआ।

राज्य स्तर पर अम्बुड्समैन (लोकायुक्त)
(Ombudsman-Lokayukta at the State Level)

किसी न किसी कारणवश लोकपाल का संस्थान केन्द्रीय स्तर पर अभी तक स्थापित नहीं हो पाया, किन्तु राज्यों में स्थिति उत्साहजनक है। उड़ीसा ऐसा पहला राज्य था जिसने लोकायुक्त ऐक्ट को लागू किया। महाराष्ट्र ने सर्वप्रथम लोकायुक्त नियुक्त किया। राजस्थान ने 1973 में ऐसा विधान लागू किया। बिहार में लोकायुक्त संस्थान की स्थापना एक अध्यादेश जारी करके 1973 में की गई जिसको कुछ समय उपरान्त विधि का रूप दे दिया गया। उत्तर प्रदेश ने 1975 में लोकायुक्त और उपलोकायुक्त ऐक्ट पास किया। कर्नाटक ने फरवरी, 1983 में एक अध्यादेश लागू किया और 1985 में इसकों कानून का रूप दिया। आन्ध्र प्रदेश विधान सभा ने 1982 में लोकायुक्त और उपलोकायुक्त विधेयक पास किया। मध्य प्रदेश लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त विधेयक को 1981 में पास किया गया और हिमाचल प्रदेश में ऐसा कानून 1983 में लागू किया गया। केरल में पब्लिक प्रीवैन्शन आफ करेप्शन ऐक्ट 1983 (Public Prevention of Corruption Act 1983) से लागू है और नागालैण्ड में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए विजिलैन्स आयोग (Vigilance Commission) कार्य कर रहा है। गुजरात भी शीघ्र ही ऐसा संस्थान स्थापित करने का यत्न कर रहा है।[8] अतः भारत में अब तक आधे राज्य लोकायुक्त संस्थान की स्थापना कर चुके हैं।

दिल्ली का लोकायुक्त ऐक्ट 1996 में पास किया गया, यह अन्य राज्यों की तुलना में अधिक प्रगतिशील है क्योंकि यह ऐक्ट लोकायुक्त को ना केवल उन शिकायतों की जाँच-पड़ताल करने का अधिकार देता है जो उसको प्राप्त हुई हैं, अपितु उन अधिकारियों को दण्ड देने की सत्ता भी प्रदान करता

है जो ऐक्ट के अधीन भ्रष्टाचार के दोषी पाये गये हैं। दिल्ली में एक लोकायुक्त तथा एक उप-लोका होगा। किसी भी नागरिक को यदि किसी लोक-अधिकारी (नौकरशाह), सरकारी कर्मचारी, वि नगर पार्षद या मंत्रिमण्डल के मंत्री या दिल्ली के मुख्यमंत्री के विरुद्ध कोई शिकायत है तो वह उसे लोकायुक्त को भेज सकता है। उसे उच्च न्यायालय के समान शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। अतः वह आरोपों की जाँच-पड़ताल कर सकता है जो उसके सम्मुख लाये गये हैं और जो व्यक्ति भ्रष्ट आचार दोषी पाये गए हैं उनको दण्ड दे सकता है। उसके निर्णय के विरुद्ध अपील केवल सर्वोच्च न्यायालय दी जा सकती है।[9]

कर्नाटक का परीक्षण (The Karnataka Experiment)

कर्नाटक में एक साहसी परीक्षण किया जा रहा है जो दूसरे राज्यों से कहीं अधिक आगे है। दृष्टि से इसको दिशादायक कहा जा सकता है। वहाँ लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त विधेयक मुख्यमंत्री रामकृष्ण हेगड़े की जनता पार्टी की सरकार ने पेश किया था जो 1986 में लागू हुआ। यह संस्थान स्थापित करता हैं लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त।

लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त दोनों स्वतंत्र अधिकारी हैं जो लोकसेवकों के कार्यों और निर्णय की जाँच-पड़ताल करते हैं। उनको विधान सभा तथा कार्यकारिणी से स्वतंत्र बनाने के लिए कई दृष्टि से सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के समान पद प्रदान किया गया है। लोकायुक्त की नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीशों में से ही की जा सकती है। उप-लोकायुक्त की नियुक्ति उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीशों में से की जायेगी। इनकी नियुक्ति राज्यपाल करता है, किन्तु उसे नियुक्ति करने से पूर्व उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, दोनों सदनों के अध्यक्षों (स्पीकर व चैयरमैन) तथा दोनों सदनों में विरोधी दल के नेताओं से परामर्श करना पड़ता है। लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त अपने-अपने पदों पर पाँच वर्ष की अवधि के लिए रहते हैं। उनको पद से केवल राज्यपाल ही हटा सकता है किन्तु वह तब तक ऐसा नहीं कर सकता जब तक कि इस सम्बन्ध में राज्य विधानमण्डल के दोनों सदनों ने एक प्रस्ताव पारित करके उसको न भेज दिया हो।[10] उनकी स्वतंत्रता और निष्पक्षता को बनाए रखने के लिए यह कहा गया है कि वे संसद या राज्य विधानसभा के सदस्य नहीं बन सकते और न ही राज्य के अधीन कोई लाभप्रद पद प्राप्त कर सकते हैं।

यदि देखा जाए तो कर्नाटक की यह व्यवस्था अधिकार-क्षेत्र, शक्तियों, जाँच-पड़ताल के कार्यों और न्यायिक कार्यों की दृष्टि से शेष राज्यों से कहीं आगे है। लोक अधिकारियों के कार्यों और निर्णयों की जाँच-पड़ताल करने के लिये लोकायुक्त और उप-लोकायुक्त को बहुत अधिक शक्ति प्रदान की गई है। लोक-अधिकारी अर्थवा लोक-सेवक की परिभाषा भी बड़ी विस्तृत दी गई है। इसके अन्तर्गत केवल मुख्य मंत्री, अन्य मंत्री, विधायक, सरकार से वेतन प्राप्त करने वाले अधिकारी आ जाते हैं, अपितु सभी वे कर्मचारी भी सम्मिलित हैं जो सरकार द्वारा अनुदान दिये जाने वाले संगठनों या संस्थानों में कार्य करते हैं। इनके अधिकार क्षेत्र को और भी अधिक विस्तृत कर दिया गया है क्योंकि इसमें सभी भूतपूर्व लोक-अधिकारियों को सम्मिलित कर दिया गया है जो कभी भी सरकार के अधीन कार्य करते रहे हों।[11] मुख्य मंत्री, अन्य मंत्रियों, विधायकों और सचिवों के विरुद्ध शिकायतों की जाँच-पड़ताल लोकायुक्त ही कर सकता है जबकि उप-लोकायुक्त अन्य सभी लोक-कर्मचारियों, जो लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते, के विरुद्ध शिकायतें प्राप्त करता है। परन्तु कुछ विशेष अधिकारी इन दोनों के अधिकार क्षेत्र के आधीन नहीं आते। वे हैं न्यायाधीश, विधानसभा का स्पीकर, विधान परिषद का अध्यक्ष, महालेखा परीक्षक (Accountant-General), मुख्य चुनाव आयोग तथा उसके कर्मचारी, कर्नाटक लोकसेवा आयोग का अध्यक्ष और सदस्य और सिविल तथा फौजदारी न्यायालयों के अधिकारी व कर्मचारी आदि।

लोकायुक्त और उप-लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र में दोनों आरोप, जैसे भ्रष्टाचार, पक्षपात, भाई-भतीजावाद आदि तथा कुप्रशासन से उत्पन्न होने वाले अन्याय की शिकायतें ही आ जाते हैं। आरोपों के आधार पर लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त लोक कर्मचारियों के विरुद्ध शिकायतों की जाँच-पड़ताल कर सकते हैं।

यद्यपि कुल मिला कर प्रशासन का कार्यभार लोकायुक्त ही सँभालता है, उपलोकायुक्त उसके अधीन नहीं होता, दोनों एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं। पहले का कार्य मुख्यतया उच्च लोक-अधिकारियो के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की छानबीन करना है, तो दूसरे का कार्य निम्न स्तर के अधिकारियों के विरूद्ध कार्यवाही करना है। इनकी सहायता के लिये चार कक्ष (Wing) स्थापित किये गए है, वे हैं– जाँच कक्ष (पुलिस), जाँच कक्ष (तकनीकी), पूछताछ कक्ष और प्रशासन कक्ष।[12]

उपरिलिखित दो संस्थानों के अतिरिक्त जिला स्तर पर जिला शिकायत कक्ष और लोकायुक्त पुलिस स्टेशन पहले से ही कार्य कर रहे हैं। यद्यपि वे लोकायुक्त के कार्य जैसा कार्य करते हैं, परन्तु उनमें कोई तालमेल नहीं है। पहला नागरिकों की शिकायतों के लिये जिम्मेदार है। दूसरा लोक अधिकारियों के विरुद्ध आरोपों और भ्रष्टाचार की शिकायतों को प्राप्त करता है। पहले का अध्यक्ष जिला अधिकारी होता है, परन्तु दूसरे के कर्मचारी पुलिस कार्मिक होते हैं जो सीधे लोकायुक्त के नियंत्रण के अधीन होते हैं।[13]

राष्ट्रीय स्तर पर लोकपाल
(Lokpal at the National level)

यह ऊपर कहा गया है कि स्कैंडेनेविया के देशों, विशेषतया स्वीडन के अम्बुड्समैन के नमूने पर एक मशीनरी राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित की जा रही थी जो नागरिकों की पीड़ा को दूर करने और भ्रष्टाचार तथा सत्ता के दुरुपयोग को रोकने के लिये कार्य करती है। केन्द्रीय सरकार के कानून मंत्री ने 26 अगस्त 1985 को लोकपाल नियुक्त करने के लिये एक विधेयक लोकसभा में पेश किया। इस विधेयक के अनुसार लोकपाल को यह अधिकार दिया गया था कि वह ऐसी शिकायतों की जाँच-पडताल करे कि अमुक लोक कर्मचारी ने ऐसा अपराध किया है, जो भारतीय दण्ड संहिता (Indian Penal Code) के अध्याय (IX) अधीन दण्ड का पात्र है, अथवा 1947 के भ्रष्टाचार को रोकने सम्बन्धी कानून (Prevention of Corruption Act, 1947) के अनुसार दण्डनीय हो। लोक कर्मचारी की परिभाषा में केन्द्रीय सरकार के मंत्री, राज्यमंत्री, उपमंत्री तथा संसदीय सचिव आते हैं। जो अधिकारी इस विधेयक की परिभाषा में सम्मिलित नहीं किए थे, वे थे– राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोकसभा स्पीकर, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, तथा अन्य न्यायाधीश, भारत का कम्पट्रोलर व महालेखाकार परीक्षक (Comptroller and Auditor General of India), मुख्य चुनाव आयोग और केन्द्रीय लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य।

विधेयक में यह कहा गया था कि भारत के सर्वप्रथम न्यायाधीश (Chief Justice of India) के साथ परामर्श करके राष्ट्रपति पाँच वर्ष की निश्चित अवधि के लिए लोकपाल को नियुक्त करेगा। ऐसे व्यक्ति को लोकपाल नियुक्त किया जा सकता था जो सर्वोच्च न्यायालय का वर्तमान अथवा भूतपूर्व न्यायाधीश हो अथवा इस न्यायालय का न्यायाधीश बनने की योग्यता रखता हो।

किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध प्राप्त शिकायत की जाँच-पड़ताल करने के उपरान्त लोकपाल अपनी रिपोर्ट प्रधान मंत्री को भेजेगा जो तीन मास के अन्दर-अन्दर लोकपाल को सूचित करेगा कि उसकी रिपोर्ट पर दोषी अधिकारी के विरूद्ध क्या कार्यवाही की गई है, या की जाने वाली है।

लोकपाल किसी शिकायत को तभी प्राप्त करेगा यदि उसके साथ 1000 रुपये और एक शपथ-पत्र भेजे गए हों। यदि कोई शिकायत तुच्छ अथवा छिछोरी हो तो उसको रद्द कर सकेगा। शिकायतें केवल उन अपराधों के सम्बन्ध में होनी चाहिए जो पांच वर्ष के भीतर किये गए हों।

विधेयक में यह व्यवस्था की गई थी कि लोकपाल न तो संसद के किसी सदन और न ही राज्य विधानमण्डलों के किसी सदन का सदस्य होगा, न ही वह किसी लाभप्रद पद पर नियुक्त होगा, न ही वह किसी राजनीतिक दल से सम्बन्धित होगा, न ही वह कोई व्यापार करेगा और न ही किसी व्यवसाय में कार्य करेगा। लोकपाल स्वतंत्र रूप से कार्य कर सके तथा बिना किसी डर अथवा पक्षपात के कार्य कर सके, विधेयक में यह व्यवस्था थी कि उसे तब तक अपने पद से नहीं हटाया जा सकेगा, जब तक कि प्रमाणित दुर्व्यवहार अथवा अयोग्यता के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा इस सम्बन्ध में आदेश जारी न किया गया हो।

परन्तु भ्रष्टाचार को समाप्त करने की यह योजना जो बहुत पहले लागू की जानी चाहिए थी, एक बार फिर लागू न की जा सकी, क्योंकि सरकार द्वारा इस विधेयक को वापस ले लिया गया।

इस विधेयक में लोकपाल की मुख्य भूमिका न्याय-निर्णायक की न होकर जाँच-पड़ताल करने की थी। यदि जाँच-पड़ताल के उपरान्त लोकपाल संतुष्ट हो कि भ्रष्टाचार या कुशासन की शिकायत उचित थी तो उसे यह अधिकार दिया गया था कि वह अपनी रिपोर्ट द्वारा सम्बन्धित उच्चाधिकारी को सिफारिश करे कि उस चूक का एक निश्चित समय में निवारण किया जाये। उसे अपनी वार्षिक रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेजनी थी और राष्ट्रपति को कहा गया था कि वह इस रिपोर्ट को संसद के दोनों सदनों के सम्मुख पेश करे।[14]

1996 में संसद में एक नया विधेयक पेश किया गया किन्तु यह अभी तक पारित नहीं किया गया। चूंकि इसमें कुछ धारायें बहुत दोषपूर्ण थीं, अतः इसका बहुत विरोध हुआ।

मार्च 1995 में लोक प्रशासन के भारतीय संस्थान (I. I. P. A.) तथा ब्रिटिश कौंसिल डिवीजन ने मिलकर एक गोष्ठी संगठित की, जिसका विषय था "अम्बुड्समैन पर वार्तालाप: भारत तथा विश्व समुदाय" (Colloquium on Ombudsmen : India and the World Community) उसके उद्देश्य थे—

1. लोकपाल विधि-निर्माण के लिए रूपरेखा;

2. वर्तमान लोकायुक्त मशीनरी को सुदृढ बनाने के लिए सुझाव प्रस्तुत करना और उनकी प्रशासनिक मशीनरी के भीतर कार्यस्थिति;

3. वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत शिकायत दूर करने की भीतरी संरचना को मजबूत करना।

इसके कुछ महत्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार थे—

1. लोकपाल के बहुसदस्यीय संस्थान की स्थापना करना जिससे एक अध्यक्ष तथा कम से कम दो सदस्य हों।

2. भ्रष्टाचार तथा कुशासन के मामले को इसके अधिकारक्षेत्र में लाना तथा इसको सत्ता प्रदान करना कि वह स्वयं ही जाँच-पड़ताल कर सके।

3. इसको संविधानिक दर्जा दिया जाये।

4. पुनर्निरीक्षण तथा संशोधन की शक्ति दी जाये।

5. इसको एक मूल जाँच एजेन्सी दी जाये जो केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर कार्य कर रही वर्तमान

जांच एजेन्सियों की सेवाओं को आमंत्रित करने की शक्ति रखती हो।

6. इसे अधिकार हो कि वह अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति के माध्यम से सीधे संसद को भेज सके, जो इसको एक निश्चित समय के भीतर संसद के सम्मुख पेश करे। यदि राष्ट्रपति ऐसा नहीं करता तो लोकपाल को अधिकार हो कि वह अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर सके।

7. तीसरे अखिल भारतीय लोकायुक्त सम्मेलन की कार्यान्वयन समिति द्वारा तैयार किये गये मॉडल लोकायुक्त विधेयक के आधार पर भारत में लोकायुक्ताओं का समान पैटर्न तैयार करना।

8. धीरे-धीरे लोकायुक्तों के अधिकारक्षेत्र को जिला, मंडल तथा ब्लाक स्तर तक ले जाना।

9. शिकायत दूर करने की भीतरी मशीनरी को सुदृढ बनाना क्योंकि यह लोकपाल संस्थान की प्रभावकारिता, कुशलता तथा सामर्थ्य के लिये अवश्यम्भावी है।

10. अच्छे प्रशासन की प्रक्रिया को सुविधापूर्ण बनाने के लिये शिकायतें दूर करने की वर्तमान एजेन्सियों के जाल में समन्वय करने वाली एक मशीनरी को विकसित करने की आवश्यकता।

भारतीय अनुभव का मूल्यांकन (Evaluation of the Indian Experience)

भारत के जिन राज्यों में अम्बुड्समैन संस्थान की स्थापना कुशासन को रोकने के लिए की गई थी वहाँ आशानुकूल सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसके कई कारण हैं–

प्रथम, भ्रष्टाचार और कुशासन से लड़ने के लिए दो पृथक् संस्थान, जैसा कि कई अन्य देशों में स्थापित किए गए हैं, भारत में स्थापित नहीं किए गए–एक कुशासन के लिए और दूसरा भ्रष्टाचार के लिए। यहाँ इन दोनों कार्यों को एक ही संस्थान करता है। जैसा कि प्रो० डोनाल्ड सी० रोवत (Prof. Donald C. Rowat) का कहना है–

"भारत की योजना में मुख्य दोष यह रहा है कि यहाँ अम्बुड्समैन संस्थान को भ्रष्टाचार के साथ लड़ने वाली मशीनरी के साथ जोड़ दिया गया है और परिणाम यह हुआ कि पीड़न सम्बन्धी शिकायतों पर ठीक उसी प्रकार कार्यवाही की गई है, जैसी कि दुर्व्यवहार या भ्रष्टाचार की शिकायतों पर। इसके दो दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम हुए हैं। मंत्रियों व उच्च अधिकारियों में अपने विरुद्ध या अपने साथी अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतों के भय का अर्थ यह हुआ है कि उन्होंने इस योजना को बड़ा कमजोर समर्थन दिया है जो इसकी प्रभावी ढंग से कार्य करने में तोड़-फोड़ या अन्तर्ध्वंस की रेखा तक पहुँच गया है। दूसरा परिणाम यह हुआ है कि जिन भयावह औपचारिक कार्यविधियों को आरोपों की जाँच-पड़ताल के लिए बनाया गया है, वहीं समान रूप से पीड़न की शिकायतों पर लागू की जाती हैं। इसका उग्र उदाहरण यह है कि शिकायत करने वाले को झूठा बयान दे बैठने की स्थिति में दण्डित किये जाने की धमकी दी गई है। दूसरे देशों में अम्बुड्समैन को प्रायः क्षुद्र या छोटे व्यक्ति का मित्र-सहायक समझा जाता है जो वर्तमान राज्य की नौकरशाही के रथ की अंधी शक्ति से उसकी रक्षा करता है।"

द्वितीय, चूँकि लोकायुक्त संस्थान भ्रष्टाचार के मामले पर भी कार्यवाही करता है, इसके कारण इसने राजनीतिज्ञों के कुछ वर्गों से शत्रुता मोल ली है, क्योंकि अधिकतर भ्रष्टाचार का प्रारम्भ इसी स्तर पर होता है। राजनीतिज्ञ इसको न केवल अपनी प्रतिष्ठा के लिये खतरा मानते हैं, अपितु उनको यह भी डर है कि यह संस्थान कार्यवाही सत्ता का एक विरोधी केन्द्र बन गया है। यह डर निराधार है, फिर भी प्रचलित है और इससे इस संस्थान के कार्य करने पर प्रभाव पड़ा है। बिहार के मुख्यमंत्री का यह कथन उल्लेखनीय है। उसने कहा "व्यक्तिगत तौर पर मैं यह अनुभव करता हूँ कि लोकायुक्त संस्थान की स्थापना करके और इसको यह शक्तियाँ देकर कि वह सदन के सदस्यों व मंत्रियों के व्यवहार की जाँच-पड़ताल कर सके, इस संप्रभु सदन ने अपनी संप्रभुता को खो दिया है।"[16]

तृतीय, लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र की भी समस्या उत्पन्न हुई है। कई राज्यों ने भूतपूर्व मंत्रियों और भूतपूर्व लोक-अधिकारियों को लोकायुक्त के अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखा है। अतः कई बार ऐसा होता है कि लोक अधिकारी अपने पद की अवधि के अन्तिम समय में अपराध करते है क्योंकि वे यह जानते हैं कि पद छोड़ जाने के उपरान्त लोकायुक्त उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकता। शिमला में लोकायुक्त और उपलोकायुक्तों का जो सम्मेलन हुआ था, उसमें भी इस आवश्यकता का अनुभव किया गया कि भूतपूर्व लोक-अधिकारियों को लोकायुक्त के अधिकार-क्षेत्र में लाया जाना चाहिये।[17]

चतुर्थ, लोकायुक्तों द्वारा किये जा रहे कार्य से पता चलता है कि उनके द्वारा प्राप्त शिकायतों का तुरन्त निपटारा नहीं किया जाता। उनके पास रुकी हुई शिकायतों की संख्या बढ़ती जा रही हैं।[18] शिकायतों का निपटारा करने में बहुत समय लग जाता है जिससे इस संस्थान को स्थापित करने का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। (शिकायत करने वाले को तुरन्त और सस्ता न्याय दिलवाना) यदि लोकायुक्त भी तुरन्त न्याय नहीं दिलवा सकता तो इसकी मुख्य विशेषता ही समाप्त हो जायेगी।

पंचम, कई राज्यों में लोकायुक्त के आधीन जाँच-पड़ताल करने वाला अपना स्वतंत्र कोई संगठन नहीं होता जो शिकायतों की छानबीन कर सके। जाँच-पड़ताल का अधिकतर कार्य सरकारी अभिकरण या संस्था को ही करना पड़ता है। इससे जनता में और शिकायत करने वालों में यह विश्वास नहीं जगाया जा सकता कि उनक साथ न्याय होगा। अतः इस बात की आवश्यकता है कि कर्नाटक की भाँति अन्य राज्यों में भी लोकायुक्त के आधीन जाँच-पड़ताल करने वाले स्वतंत्र संगठन को स्थापित किया जाए।

अन्त में यह कहना होगा कि भले ही इस संस्थान की कुछ कमजोरियाँ हों, फिर भी इस संस्थान का होना न होने की अपेक्षा अच्छा है। इस संस्थान की केवल उपस्थिति मात्र ही लोक-अधिकारियों में संयम से कार्य करने के लिए डर उत्पन्न करेगी। जैसे-जैसे समय बीतेगा यह संस्थान सुधारों और समायोजन के द्वारा विकसित होगा। आवश्यकता इस बात की है कि राजनीतिज्ञों और प्रशासकों को इसकी वांछनीयता में विश्वास होना चाहिए और इसको सहयोग देने के लिये सही व्यवहार हो। इस संदर्भ में प्रो० रावत की चेतावनी यहाँ उल्लेखनीय होगी। उनका कहना है कि इस व्यवस्था को प्रतिरोपित करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए– "अम्बुड्समैन रामबाण या सर्वरोगहारी औषधि नहीं हो सकता। कई लोग अम्बुड्समैन को एक प्रकार का जादू का शब्द समझते हैं जो सभी प्रशासनिक रोगों का उपचार कर देगा। किन्तु राज्य और व्यक्ति के बीच सम्बन्धों की पुरातन समस्या बहुत अधिक जटिल है जो किसी एक सरल योजना द्वारा नहीं सुलझाई जा सकती। प्रशासनिक कार्य पर हमें विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों की आवश्यकता है और अम्बुड्समैन योजना के साथ-साथ सुधारों की जरूरत है जो हमारी नियंत्रण व्यवस्था में रिक्त स्थानों की पूर्ति कर सके, अन्यथा यह योजना असफल हो सकती है क्योंकि हम इससे बहुत कुछ करवाने का प्रयत्न कर रहे हैं।"[19]